
इकाई 9 (ध्वन्यालोकः) प्रथम उद्योत, कारिका 11 से 14 तक

इकाई की रूपरेखा—

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 इकाई का शीर्षक—(ध्वनि लक्षण निरूपण)
 - 9.2.1 वाच्य की प्रथम प्रतीति होने पर भी व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य का उपपादन
 - 9.2.2 ध्वनिकाव्य का लक्षण
 - 9.2.3 अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का खण्डन, व ध्वन्यभाववादियों का समाधान
 - 9.2.4 अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाववाद बोध खण्डन का उपसंहार
 - 9.2.5 'सूरिभिः कथितः' इस कारिका भाग का व्याख्यान।
- 9.3 ध्वनि के दो मुख्य भेद एवं दोनों के उदाहरण
- 9.4 सारांश
- 9.5 शब्दावली
- 9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 9.7 बोध प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप—

- काव्यों में व्यङ्ग्यार्थ की ही प्रधानता होती है इस तथ्य को प्रमाणान्तर से निरूपित करने में समर्थ होंगे।
- ध्वनिकाव्य के लक्षण एवं स्वरूप को बताने में सक्षम होंगे।
- अभाववादियों के मत का खण्डन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- समासोक्ति अलंकार में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता इस तथ्य को जान सकेंगे।
- आक्षेपालंकार में भी ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता इस तथ्य को बताने में सक्षम होंगे।
- अन्य विविध अर्थालंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का खण्डन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- वैयाकरणों के अनुसार ध्वनि के स्वरूप को जान सकेंगे।
- ध्वनि के मुख्य दो भेदों को उदाहरण के द्वारा प्रदर्शित करने में समर्थ होंगे।

9.1 प्रस्तावना

साहित्यशास्त्र में षट्सिद्धान्त प्रसिद्ध है— यथा— रससिद्धान्त, अलंकारसिद्धान्त, रीतिसिद्धान्त, ध्वनिसिद्धान्त, वक्रोक्तिसिद्धान्त और औचित्यसिद्धान्त। इन सिद्धान्तों में ध्वनिसिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में आचार्य आनन्दवर्धन का नाम सर्वस्वीकृत है। आचार्य आनन्दवर्धन के द्वारा अपनी प्रसिद्ध कृति ध्वन्यालोक में ध्वनिसिद्धान्त का प्रतिपादन सविशेष किया गया है। चार उद्योतों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम उद्योत में आनन्दवर्धन के द्वारा भी ध्वनिविरोधी आचार्यों के मत-मतान्तरों का सम्भावना व उपलब्धसाक्ष्य के आधार पर पहले उपस्थापन किया गया और तत्पश्चात् उन मतों का तार्किक रीति से खण्डन प्रस्तुत कर ध्वनिसिद्धान्त की निर्विवाद व निर्भ्रान्त स्थापना की गई जो परिवर्ति आचार्यों के लिए अनुकरणीय हुआ। आचार्य का दृढ मत है कि काव्य में वर्णित सभी तत्त्व जब ध्वनि का संस्पर्श पाते हैं तभी उसमें रमणीयता आती है। और ध्वनि का संस्पर्श होता है— व्यंजनाव्यापार के द्वारा। इसी क्रम में आचार्य के द्वारा ध्वनि का स्वरूप निरूपण किया गया जो अपने आप में अपूर्व व विलक्षण है।

इस इकाई में आप विशेष रूप से व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमानार्थ) के प्राधान्य की अक्षुण्णता ध्वनि का लक्षण एवं स्वरूप, ध्वनि-काव्य के दो सामान्य भेद एवं उसके उदाहरण, अभाववादियों के मतों का निराकरण एवं अलंकारों में ध्वनिके अन्तर्भाव का खण्डन, ध्वनि का महाविषय के रूप में (अङ्गीरूप में) प्रतिपादन, गुणालंकार-रीति वृत्ति प्रभृति तत्त्वों का अङ्गरूप में निरूपण वैयाकरणों के अनुसार ध्वनि का स्वरूप निरूपण ध्वनि के सामान्य दो भेद प्रभृति अनेक विषयों का अध्ययन करेंगे। अध्ययनोपरान्त आप ध्वनि के स्वरूप पर प्रकाश डालने में सक्षम होंगे।

9.2 ध्वनिलक्षणनिरूपण

वस्तुतः इस इकाई के अन्तर्गत यद्यपि कई विषय संगृहीत हैं तथापि प्रधानता के कारण इकाई का शीर्षक ध्वनिलक्षणनिरूपण रखा गया है। ध्वनि के लक्षण का विशेष एवं विस्तारपूर्वक निरूपण 9.2.2 में किया जाएगा।

9.2.1 वाच्य की प्रथम प्रतीति होने पर भी व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य का उपपादन

पूर्व की कारिका में यह प्रदर्शित किया गया कि प्रतीयमानार्थ की प्रतीति वाच्यार्थप्रतीति पूर्वक ही होती है। इससे यह शंका होती है कि फिर तो वाच्यार्थवादी प्राधान्य हो जाएगा? इसका निवारण हेतु और व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य की अक्षुण्णता हेतु ध्वनिकार अगली कारिका प्रवर्तित करते हैं— यथा—

जैसे उपस्थित पदार्थ अपने सामर्थ्य के सहयोग के वाक्यार्थ बोध के लिए अपने को समर्पण कर देता है अर्थात् पदार्थ वाक्यार्थ बोध कराकर स्वयं रहता हुआ भी प्रधान रूप से नहीं रहता है। उसी प्रकार चमत्कार हीन नीरस वाच्यार्थ भी सहृदयों के तत्त्वार्थदर्शिनी बुद्धि में नहीं भासित होता है, अपितु प्रधान रूप में चमत्कारजनक व्यङ्ग्यार्थ ही हृदय में प्रस्फुटित होता है। यथा—

तद्वत् सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम् ।
बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते ॥

अर्थ— इसी प्रकार वाच्यार्थ से विमुख सहृदयों की तत्त्वदर्शन समर्थ बुद्धि में वह प्रतीयमान अर्थ तुरन्त ही प्रतीत हो जाती है।

पदार्थ परस्पर योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति के सहयोग से ही वाक्यार्थ ज्ञान कराते हैं, यही पदार्थ का सामर्थ्य है या वाक्यार्थ बोध में ये तीनों पदार्थ के सहकारी कारण हैं, अर्थात् जब तक पदों के परस्पर अन्वयबोध में बाधा का अभाव नहीं होगा, तब तक पद समुदाय वाक्यार्थ का ज्ञान नहीं करा सकता है। पदों के परस्पर अन्वय में किसी प्रकार की बाधा का न होना ही योग्यता है। जैसे— 'वहिनना सिंचति' यह पद समुदाय योग्यता रहित है, क्योंकि वहिन (अग्नि) में सिंचन की योग्यता नहीं है। इसी प्रकार किसी पद समुदाय को वाक्य बनने के लिए उसमें आकांक्षा भी आवश्यक है, अर्थात् श्रोता की जिज्ञासा का बना रहना भी वाक्य में आवश्यक है। जैसे— गौः, हस्ती, पुरुषः इत्यादि पदसमुदाय होते हुए भी वाक्य नहीं कहे जाएँगे, क्योंकि इनमें आकांक्षा का अभाव है, क्योंकि यहाँ 'गौः' पद का उच्चारण करके आगे गच्छति आदि की आकांक्षा होती है, अतः आकांक्षा के अभाव में उक्त पदसमूह को वाक्य नहीं कहा जा सकता है।

इसी प्रकार वाक्यार्थ ज्ञान में 'आसक्ति' या पदों की अन्विति भी कारण है, जिससे अभाव में भी वाक्यार्थ बोध नहीं होता है। पदों की परस्पर सामयिक करता ही आसक्ति है। यदि — 'देवदत्तः' यह पद उच्चरित कर, पुनः एक या दो घण्टे के बाद 'गच्छति' यह कहा जाएगा, तो पदों के परस्पर सान्निध्य के अभाव में उक्त पदसमूह वाक्य नहीं माना जाएगा। अतः वाक्यार्थ ज्ञान के लिए पदसमुदाय में योग्यता, आकांक्षा व सन्निधि का होना परमावश्यक है। तात्पर्य यह है कि यदि पदज्ञान वाक्यार्थज्ञान में कारण है तो ये योग्यता आदि भी वाक्यार्थज्ञान के सहकारी कारण हैं।

पूर्वोक्त पद्य में ग्रन्थकार का कहना है कि जिस प्रकार अपने सामर्थ्यवश वाक्यार्थ को प्रकाशित करता हुआ भी पदार्थ अपने वाक्यार्थ—प्रकाशन रूप व्यापार की निष्पत्ति की स्थिति में फिर विभक्त रूप में भासित नहीं होता है, उसी प्रकार सहृदयों की तत्त्वार्थदर्शिनी बुद्धि में भी व्यङ्ग्यार्थ ही प्रतिभासित होता है, अर्थात् वाच्यार्थ प्रतीति एकदम विघटित तो नहीं होती है, परन्तु उपायरूप से व्यङ्ग्यार्थ का प्रकाशन कर स्वयं पृथक् सत्ता के रूप में अवभासित नहीं होती है। 'तद्वत् सचेतसाम्' कारिका के 'झटित्येवावभासते' से यह सूचित किया कि यद्यपि वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति में क्रम अवश्य रहता है परन्तु वह लक्षित नहीं होता, इसलिए रसादिरूप ध्वनि असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि है।

वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ का द्योतन होता है। इसका अभिप्राय है कि जिस प्रकार दीपक अपने प्रकाश से घट को प्रकाशित करता हुआ अपने को भी प्रकाशित करता है उसी प्रकार वाच्यार्थ भी व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमानार्थ) को प्रतीत कराता हुआ स्वयं भी प्रतीत होता है। वाच्यार्थ से विमुख सहृदय लोग झटिति उस व्यङ्ग्यार्थ का ज्ञान करते हैं। इससे क्रम रहता हुआ भी उन्हें क्रम रहता हुआ भी उन्हें क्रम अभिलक्षित नहीं होता है।

9.2.2 ध्वनिकाव्य का लक्षण

अभी तक ध्वनि के विषय में उसकी सत्ता, साधुभाव, उत्तमता, श्रेष्ठता, एवं वाच्यव्यतिरेकिणो व्यङ्ग्यस्यार्थस्य सदभावं प्रतिपाद्य प्रकृत उपयोगन्नाह—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।

व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

अर्थ— इस प्रकार वाच्यार्थ से अतिरिक्त व्यङ्ग्यार्थ की सत्ता तथा प्राधान्य का प्रतिपादन करके प्रकृत में उसका उपयोग दिखलाते हुए कहते हैं—

जहाँ अर्थ अपने को (स्व) अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस (प्रतीयमान) अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वान् लोग ध्वनि (काव्य) कहते हैं।

इसी बात को कारिका की वृत्ति में और स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

“यत्रार्थो वाच्यविशेषः, वाचकविशेषः शब्दो वा, तमर्थं व्यक्तः, स काव्यविशेषो ध्वनिरिति ।
अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम् ।”

अर्थात् जहाँ वाच्यविशेष, अथवा वाचकविशेष शब्द, उस (प्रतीयमान) अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं उस काव्यविशेष को ‘ध्वनिकाव्य’ कहते हैं।

इससे वाच्यवाचक के चारुत्वहेतु उपमादि और अनुप्रासादि से अलग ही ध्वनि का विषय है यह दिखलाया गया।

व्याख्या — यहाँ ‘वा’ शब्द अर्थ विकल्प व समुच्चय दोनों है। ‘यत्रार्थः शब्दो वा’ में ‘वा’ पद शब्द और अर्थ के प्राधान्याभिप्रायेण विकल्प को बोधन करता है। अभिव्यक्ति में कारण दोनों होते हैं परन्तु प्राधान्य शब्द और अर्थ में एक का ही होता है। इसीलिए शाब्दी और आर्थी दो प्रकार की व्यंजना मानी गयी है। साहित्यदर्पणकार ने लिखा है—

‘शब्दबोध्यो व्यनक्त्यर्थः शब्दोऽप्यर्थान्तराश्रयः।

एकस्य व्यंजकत्वे तदन्यस्य सहकारिता।।’

वस्तुतः अविवक्षितवाच्यध्वनि में शब्द की प्रधानता होते हुए भी अर्थ की सहकारिता रहती है और विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि में अर्थ की प्रधानता के साथ शब्द भी सहकारी होता ही है। प्राधान्य की अपेक्षा यहाँ शब्दार्थ का विकल्प है और सामान्य की अपेक्षा शब्दार्थ का समुच्चय है। इस प्रकार सर्वत्र ध्वनन शब्द और अर्थ दोनों का व्यापार है। ‘स्वश्चार्थश्च स्वार्थो। तौ गुणीभूतौ याभ्यां यथासंख्येन तेन अर्थो गुणीकृतात्मा, शब्दश्च गुणीकृताभिधेयः। ‘व्यक्तः’ यह द्विवचन इस बात का सूचक है कि व्यङ्ग्य अर्थ की अभिव्यक्ति में शब्द और अर्थ दोनों ही कारण होते हैं किन्तु एक प्रधान कारण दूसरा सहकारी। शब्द-अर्थ की इसी सम्मिलित व्यंजकता के कारण ‘व्यक्तः (द्योतयतः) इस द्विवचन के प्रयोग की सार्थकता भी है। भट्टनायक द्वारा इस का दूषण उनका अज्ञान प्रकट करता है।

उक्त ध्वनिलक्षणकारिका में ध्वनि को काव्यविशेष कहा है। लोचनकार का कहना है कि ‘काव्यविशेषः’ इस पद का दो तरह से समास हो सकता है— ‘काव्यं च तद्विशेषश्चासौ काव्यस्य वा विशेषः। यदि केवल काव्यविशेष को ही ध्वनि मान लिया जाए, तो काव्य (सामान्य) में ध्वनित्व नहीं आएगा अर्थात् काव्यमात्र को ध्वनि नहीं कह सकते हैं। अतः कर्मधरय समास द्वारा काव्य व उसके वैशिष्ट्य का भी ग्रहण किया गया है।

तात्पर्य यह है कि ध्वनि काव्य का आत्मा है, परन्तु केवल ध्वनि से काव्य का व्यवहार नहीं होगा, अपितु ध्वनिविशेष से ही काव्य का व्यवहार होगा। इसका वैशिष्ट्य है गुणालंकारादि से शब्दार्थयुगल का संस्कृत होना, जैसा कि लोचनकार का कहना है— ‘काव्यग्रहणाद् गुणालंकारोपस्कृतशब्दार्थपृष्ठपाती ध्वनि लक्षणआत्मेत्युक्तम्। अतः ‘काव्यविशेषः’ यह पद यहाँ साभिप्राय है। यदि केवल ध्वनि के अस्तित्व मात्र से ‘काव्य’

मान लेने की छूट दे दी जाय तो मीमांसकों के यहाँ प्रसिद्ध 'श्रुतार्थापत्ति' का स्थल भी 'काव्य' के रूप में व्यवहृत होगा। जैसे 'पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते' इस श्रुतवाक्य से जो दिन में भोजन के अभाव में पीनत्व रूप अर्थ ज्ञात होता है उसकी अन्यथानुपपत्ति को लेकर 'रात्रौ भुंक्ते' इस रात्रिभोजन रूप अर्थ के प्रतिपादक अन्य वाक्य की कल्पना करते हैं। परन्तु यहाँ 'ध्वनि' होते हुए भी गुण-अलंकार से उपस्कृत शब्द-अर्थ का अभाव है अतः यहाँ काव्य-व्यवहार नहीं हो सकता।

यहाँ ध्वनि शब्द का प्रयोग, (शब्द, अर्थ, व्यापार, व्यङ्ग्य व काव्यविशेष) इस समुदाय में किया गया है।

ध्वनितीति यः सः शब्दः अर्थो वा ध्वनिः, व्यङ्ग्यो वा ध्वन्यते इति व्यापारो वा। 'ध्वन्यतेऽस्मिन् इति ध्वनि' इस अधिकरण द्वारा काव्यविशेष ध्वनि होगा। अतः ध्वनि शब्द यहाँ केवल व्यष्टि बोधक न होकर समष्टिपरक है। वस्तुतः कारिका द्वारा तो प्रधानतया समुदाय ही काव्यरूप मुख्यरूप से 'ध्वनि' है, ऐसा प्रतिपादन किया है।

9.2.3 अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का खण्डन, व ध्वन्यभाववादियों का समाधान

ध्वन्यालोक की प्रथमकारिका के व्याख्यान में ध्वनि के अभाववादियों के विकल्पों की जो संभावना की गयी थी, अब उन विकल्पों का यथाक्रम ग्रन्थकार समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. अभाववाद के प्रथमविकल्प का समाधान—

प्रथम ध्वनि-अभाववादी का कथन था कि गुणालंकार से अतिरिक्त ध्वनि नाम की कोई वस्तु नहीं है। अर्थात् ध्वनि गुणालंकार स्वरूप ही है। उत्तर में ध्वनिकार का कथन है कि पूर्वोक्त ध्वनि की सत्ता साधुभाव व लक्षण प्रमाणादि से यह निश्चित है कि ध्वनि व गुणालंकारों का विषय विभाग पृथक् पृथक् है, क्योंकि वाच्यवाचक के चारुत्वहेतु उपमादि अलंकार है और संघटनाश्रित चारुत्व के हेतु गुणादि है।

इस प्रकार गुणालंकार तो वाच्यवाचकभाव निष्ट हैं, परन्तु ध्वनि तो व्यङ्ग्य-व्यंजक भाव का समाश्रयण करता है, अतः दोनों का पृथक् आधार होने से गुणालंकारों में ध्वनि का न तो अन्तःपात हो सकता है और न एकरूपता ही हो सकती है। फलतः विरुद्धाधिकरणवृत्ति होने से ध्वनि का अपना पृथक् विभाग है ध्वनि का विषय अपने आप में पूर्ण है। जैसा कि ध्वनिकार ने वृत्ति में लिखा है— अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम्।

अर्थात् वाच्य और वाचक की चारुता के हेतु उपमादि और अनुप्रास आदि से ध्वनि का विषय विभक्त ही है, यह दिखाया। अतः ध्वनि को उपमा आदि के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता है। उपमा आदि वाच्य और वाचक के चारुत्व के हेतु हैं किन्तु ध्वनि का प्राण व्यङ्ग्य-व्यंजक भाव है।

2. अभाववाद के द्वितीय विकल्प का निराकरण—

द्वितीय ध्वन्यभाववादी प्रसिद्ध प्रस्थानवादी हैं। इनका कथन था कि काव्य का प्रस्थान तो प्रसिद्ध ही है, जैसा कि परम्परा से चला आया है। शब्दार्थयुगल काव्य का शरीर है तो गुणालंकार उसके शोभाधयक तत्त्व है। उक्त प्रस्थान से इतर तो

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

काव्य का कोई प्रकार ही नहीं बनता है, यदि किसी ने किसी अन्य प्रकार की कोई कल्पना कर भी ली तो समस्त पण्डितमण्डल तो उसे मानने के लिए तैयार नहीं है। इसके उत्तर में ग्रन्थकार का कथन है कि लक्ष्य के अनुसार ही लक्षण की व्यवस्था होती है, यदि ध्वनितत्त्व प्रसिद्ध रामायण—महाभारतादि महाकाव्यों में सुप्रतीत है तो लक्षणाप्रसिद्धि उसकी बाधक नहीं हो सकती है। लक्ष्यग्रन्थों की परीक्षा करने पर सहृदयहृदयानन्ददायक काव्य का प्राणस्वरूप सारभूत वह ध्वनितत्त्व सिद्ध हो चुका है। अतः दुराग्रही लक्षणकारों की असमीक्ष्यकारितावश वह अनुपलब्ध है, न कि उसका अभाव है। उससे भिन्न (ध्वनितत्त्व से भिन्न) काव्य चित्रकाव्य ही है यह भागे वर्णित किया जाएगा।

जैसा कि ग्रन्थकार ने कहा है— 'यदप्युक्तम्— प्रसिद्धप्रस्थानातिक्रमिणो मार्गस्य काव्यहानेर्ध्वनिर्मास्ति' इति तदप्युक्तम्। यतो लक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम्। ततोऽन्यच्चित्रमेवेत्यग्रे दर्शयिष्यामः।'

अर्थ— और जो यह कहा था कि प्रसिद्ध मार्ग से भिन्न मार्ग में काव्यत्व ही नहीं रहेगा इसलिए ध्वनि नहीं है' वह ठीक नहीं है, क्योंकि यह केवल (उन) लक्षणकारों के ही प्रसिद्ध (ज्ञात) नहीं है, परन्तु लक्ष्यग्रन्थों (रामायण—महाभारत प्रभृति) की परीक्षा करने पर तो सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करने वाला काव्य का सारभूत तत्त्व वही ध्वनि है। उससे भिन्न काव्य चित्र (काव्य) ही है, यह हम आगे दिखलायेंगे।

3. अभाववाद के तृतीय विकल्प का समाधान—

तृतीय ध्वन्यभाववादी जिसे अन्तर्भाववादी भी कहा जाता है। इस पक्ष का कथन था कि यदि आप ध्वनिसिद्धान्तवादी ध्वनि को काव्य के चारुत्व का हेतु मानते हैं, तो फिर काव्य के सुप्रसिद्ध चारुत्व हेतु जो गुणालंकार है इन्हीं में कहीं ध्वनि का अन्तर्भाव मान लिया जाए। अतः ध्वनिनामक कोई विलक्षण पदार्थ नहीं है।

इसके उत्तर में ध्वनिकार का कथन है कि — यदप्युक्तम्— 'कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तालंकारादिप्रकारेष्वन्तर्भावः' इति, तदप्यसमीचीनम्। वाच्यवाचकमात्राश्रयिणि प्रस्थाने व्यङ्ग्यव्यंजकसमाश्रयेण व्यवस्थितस्य ध्वनेः कथमन्तर्भावः। वाच्यवाचकचारुत्वहेतवो हि तस्याङ्गभूताः, स त्वङ्गिरूप एवेति प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्।

अर्थ— और जो यह कहा था कि यदि वह रमणीयता का अतिक्रमण नहीं करता है तो उक्त (गुण—अलंकारादि) चारुत्वहेतुओं में ही उस ध्वनि का अन्तर्भाव हो जाता है' वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि केवल वाच्यवाचकभाव पर आश्रित मार्ग के अन्दर व्यङ्ग्य—व्यंजकभाव पर आश्रित ध्वनि का अन्तर्भाव कैसे हो सकता है। फिर वाच्य—वाचक की शोभा को (चारुत्व) बढ़ाने वाले उपमा, अनुप्रासादि अलंकार तो ध्वनि के उपकारक हैं ध्वनि के अङ्गरूप हैं ध्वनि तो महाविषय होने के कारण अङ्गी (प्रधान रूप) है, अतः उस व्यापक ध्वनि का, सीमित उन अलंकारों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, इस बात का प्रतिपादन आगे करेंगे। इस परिकर श्लोक के द्वारा उक्त बातों का उपसंहार करते हैं—

व्यङ्ग्यव्यंजकसम्बन्धनिबन्धनतया ध्वनेः।

वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्तःपातिता कुतः॥

अर्थात्— व्यङ्ग्यव्यंजकभाव मूलक ध्वनि का वाच्यवाचकमात्र के चारुत्व हेतुओं में कैसे अन्तर्भाव हो सकता है। निर्णीत हुआ कि अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

(ध्वन्यालोकः) प्रथम
उद्योत, कारिका 11
से 14 तक

अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव की आशंका एवं उसका निराकरण—

पुनः अलंकारवादी पूर्वपक्षी का कथन है कि ऐसे स्थल जहाँ प्रतीयमान अर्थ की स्पष्टतया प्रतीति नहीं होती है उसमें ध्वनि स्वीकार न किया जाए, परन्तु जहाँ प्रतीयमान अर्थ की विशदतया प्रतीति हो रही है— जैसे— समासोक्ति, आक्षेप अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति, अपह्नुति, दीपक, पर्यायोक्त, संकर आदि अलंकारों में तो ध्वनि का अन्तर्भाव हो सकता है।

इस मत के निराकरण के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि यह भी संगत नहीं है। क्योंकि ध्वनि के लक्षण में ही हमने बता दिया है कि— “उपसर्जनीकृतस्वार्थौ” इति। अर्थात् जहाँ अर्थ अपने आपको गुणीभूत करके और शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके किसी चमत्कार पूर्ण अर्थान्तर (विशेष अर्थ) को अभिव्यक्त करता है, वहीं काव्य होता है। अर्थात् व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता में ही ध्वनि का व्यवहार होता है, समासोक्ति आदि में तो व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता नहीं रहती है। इन अलंकारों में व्यङ्ग्यार्थ गौण रहता है अतः इन्हें गुणीभूत व्यङ्ग्य भी कहते हैं। जैसा कि ग्रन्थकार ने वृत्ति में लिखा है— ननु यत्र प्रतीयमानार्थस्य वैशद्येनाप्रतीतिः स नाम मा भूद् ध्वनेर्विषयः। यत्र तु प्रतीतिरस्ति, यथा समासोक्त्याक्षेपानुक्तनिमित्तविशेषोक्तिपर्यायोक्त्यापह्नुतिदीपकसंकरालंकारादौ, तत्र ध्वनेरन्तर्भावो भविष्यति इत्यादि निराकर्तुमभिहितम्— “उपसर्जनीकृतस्वार्थौ” इति। अर्थोगुणीकृतात्मा गुणीकृताभिधेयः शब्दो वा यत्रार्थान्तरमभिव्यनक्ति स ध्वनिरिति। तेषु कथं तस्यान्तर्भावः। व्यङ्ग्यप्रधान्ये हि ध्वनिः। न चैतत् समासोक्त्यादिध्वस्ति।”

समासोक्ति में ध्वनि के अन्तर्भाव का निषेध— समासोक्ति अलंकार में ध्वनिके अन्तर्भाव का निषेध करते हुए ग्रन्थकार पहले समासोक्ति अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यथा— समासोक्तौ तावत्—

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।

यथा समस्तं तिमिरांशुकं तथा पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम्॥

अर्थ— सन्ध्याकालीन आरुण्य (लालिमा) को धरण किये हुए (दूसरे पक्ष में प्रेमोन्मत्त) शशी (अर्थात् चन्द्र, पक्षान्तर में पुलिङ्ग शशी पद से व्यङ्ग्य नामक) ने निशा (रात्रि, पक्षान्तर में स्त्रीलिङ्ग निशा शब्द से नायिका) के चंचल तारों से युक्त मुख को इस प्रकार ग्रहण किया कि राग के कारण सारा तिमिर रूप वस्त्र गिर जाने पर भी उसे (निशा तथा नायिका को) दिखलायी नहीं दिया।

भामह ने समासोक्ति का लक्षण निम्नलिखित प्रकार से किया है—

यत्रोक्तौ गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानैर्विशेषणैः।

सा समासोक्तिरुदिता संक्षिप्तार्थतया बुधैः॥

भामह, काव्यालंकार 2.79

जिस उक्ति में, समान विशेषणों के कारण प्रस्तुत से अन्य अर्थ की प्रतीति से उस उक्ति को संक्षिप्तार्थ होने से (एक साथ प्रकृत और अप्रकृत दोनों का वर्णन करने से) समासोक्ति कहते हैं।

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

उक्त उदाहरण में सन्ध्याकाल में चन्द्रोदय का वर्णन कवि कर रहा है। उसमें निशा और शशी का वर्णन प्रकृत है। निशा और शशी के समान लिङ्ग और समान विशेषणों के कारण नायिका-नायक की प्रतीति होती है और उनके व्यवहार का समारोप निशा और शशी पर होने से यह समासोक्ति अलंकार माना जाता है। पूर्वपक्ष यह है कि यहाँ नायक-नायिका व्यवहार व्यङ्ग्य है, वाच्य नहीं। अर्थात् इस श्लोक में समासोक्ति के साथ ध्वनि भी है। इसलिए ध्वनि का अन्तर्भाव समासोक्ति अलंकार में माना जा सकता है।

इसका निषेध करते हुए ध्वनिकार लिखते हैं— 'इत्यादौ व्यङ्ग्येनानुगतं वाच्यमेव प्राधान्येन प्रतीयते। समारोपितनायिकानायकव्यवहारयोर्निशाशशिनोरेव वाक्यार्थत्वात्।

अर्थ— यहाँ समारोपित नायक-नायिकाव्यवहार से युक्त शशी और निशा के ही वाक्यार्थ होने से, व्यङ्ग्य से अनुगत वाच्य ही प्रधानतया प्रतीत होता है। अर्थात् व्यङ्ग्य का प्राधान्य न होने से यहाँ ध्वनि नहीं है अतः ध्वनि का समासोक्ति में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

आक्षेपालंकार में ध्वनि के अन्तर्भाव का निषेध-समासोक्ति के समान आक्षेपालंकार में भी ध्वनिके अन्तर्भाव का निषेध दिखाते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

'आक्षेपेऽपि व्यङ्ग्यविशेषाक्षेपिणोऽपि वाच्यस्यैव चारुत्वं प्राधान्येन वाक्यार्थ आक्षेपोक्तिसामर्थ्यादेव ज्ञायते। तथाहि तत्र शब्दोपारूढो विशेषाभिधानेच्छया प्रतिषेधरूपो य आक्षेपः स एव व्यङ्ग्यविशेषमाक्षिपन् मुख्यं काव्यशरीरम्।

अर्थात् आक्षेपालंकार में भी व्यङ्ग्यविशेष का आक्षेप करानेवाला होनेपर भी वाच्य का ही चारुत्व प्राधान्य है। क्योंकि आक्षेपवचन के सामर्थ्य से ही प्रधानतः वाक्यार्थ प्रतीत होता है। क्योंकि वहाँ (आक्षेपालंकार में) विशेष के बोधन की इच्छा से शब्दोपात्त प्रतिषेधरूप जो आक्षेप है, वही व्यङ्ग्यविशेष का आक्षेप कराता हुआ मुख्य काव्यशरीर है। अतः आक्षेपालंकार में भी ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

वस्तुतः चारुत्वोत्कर्ष ही वाच्य और व्यङ्ग्य के प्राधान्य का नियामक है। जैसे— चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा। यथा—

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तपुरःसरः।

अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः।।

सन्ध्या (नायिका) अनुराग (प्रेम) से युक्त है और दिवस (नायक) उसके सामने सरक रहा है (उसका भार बढ़ रहा है) अहो दैवगति कैसी है कि तब भी समागम नहीं होता।

यहाँ उभयानुराग होने पर भी गुरुजनों की परतन्त्रता आदि का कारण व्यङ्ग्य विशेष का यद्यपि आक्षेप हो रहा है, परन्तु चमत्कार, दिवस व सन्ध्यारूप वाच्यार्थ में ही है। अतः उक्त स्थल में भी व्यङ्ग्य की प्रधानता के न होने से ध्वनि का उसमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। जिस प्रकार दीपक व अपहनुति आदि में भी व्यङ्ग्यरूप से उपमा की प्रतीति होने पर भी मुख्यरूप से उपमा की विवक्षा न होने के कारण, उसका व्यवहार नहीं होता है, उसी प्रकार आक्षेपालंकार में भी व्यङ्ग्य के रहने पर भी अत्यन्त रमणीय वाच्यार्थ का ही मुख्य रूप से व्यवहार होता है।

इस प्रकार दीपक व अपहनुति अलंकार में भी ध्वनि के अन्तर्भाव का निषेध प्रदर्शित किया गया। इसी प्रकार अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति में भी व्यङ्ग्य के अप्रधान रहने पर

ध्वनि के अन्तर्भाव की कोई सम्भावना ही नहीं की जा सकती है। इस अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति के उदाहरण में भी प्रकरण के सामर्थ्य से व्यङ्ग्य की प्रतीति मात्र हो जाती है, परन्तु उसी प्रतीति के कारण कोई चारुत्व की निष्पत्ति नहीं होती है। अतः यहाँ भी व्यङ्ग्य की प्रधानता नहीं है। फलतः इसमें भी ध्वनि के अन्तर्भाव की सम्भावना नहीं है।

पर्यायोक्त अलंकार में ध्वनि के अन्तर्भाव की आशंका पर्यायोक्त अलंकार में भी यदि व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता हो तो उस अलंकार का ध्वनि (अलंकार ध्वनि) में अन्तर्भाव किया जा सकता है, न कि ध्वनि का उस अलंकार में। क्योंकि ध्वनि तो महाविषय और अङ्गी अर्थात् प्रधानरूप से प्रतिपादित किया जाएगा। वस्तुतः भामह द्वारा उदाहृत पर्यायोक्त में तो व्यङ्ग्य की प्रधानता ही नहीं है, क्योंकि उसमें वाच्य का गौणत्व विवक्षित नहीं है। अर्थात् वाच्य ही प्रधान है, अतः उसे ध्वनि नहीं कहा जा सकता।

अपह्नुति तथा दीपक में वाच्य का प्राधान्य और व्यङ्ग्य का वाच्यानुगामित्व प्रसिद्ध ही है।

अतः वहाँ भी ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। जैसा कि ग्रन्थकार कहते हैं—
“पर्यायोक्तोऽपि यदि प्राधान्येन व्यङ्ग्यत्वं तद् भवतु नाम तस्य ध्वनावन्तर्भावः, न तु ध्वनेस्तत्रान्तर्भावः। तस्य महाविषयत्वेन, अङ्गित्वेन च प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। न पुनः पर्यायोक्ते भामहोदाहृतसदृशे व्यङ्ग्यस्यैव प्राधान्यम्। वाच्यस्य तत्रोपसर्जनीभावेनाविवक्षितत्वात्। अपह्नुतिदीपकयोस्तु पुनर्वाच्यस्य प्राधान्यं व्यङ्ग्यस्य चानुयायित्वं प्रसिद्धमेव।

इसी प्रकार ग्रन्थकार ने संकरालंकार एवं अप्रस्तुतप्रशंसालंकार में भी ध्वनि के अन्तर्भाव का वितारपूर्वक निषेध प्रदर्शित करते हुए यह स्थापित किया कि ध्वनि का अन्तर्भाव अलंकारों में नहीं किया जा सकता, अतः जो अभाववादी ऐसी संभावना कर ध्वनि का अभाव है इस कारण ध्वनि का निरूपण नहीं किया, उनका चिन्तन ठीक नहीं है। ध्वनि है और ध्वनि की सत्ता को पारिभाषित भी किया गया है।

9.2.4 अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाववाद बोध खण्डन का उपसंहार

अभाववादियों में भी ध्वनि का अलंकारों में अन्तर्भाववादी के पक्ष का उपसंहार करते हुए ग्रन्थकार ने सारांश के रूप में अपना पक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है— तदयमत्र संक्षेपः—

व्यङ्ग्यस्य यत्राप्राधान्यं वाच्यमात्रानुयायिनः।
समासोक्त्यादयस्तत्र वाच्यालंकृतयः स्फुटाः।।
व्यङ्ग्यस्य प्रतिभामात्रो वाच्यार्थानुगमेऽपि वा।
न ध्वनिर्यत्र वा तस्य प्राधान्यं न प्रतीयते।।
तत्परावेव शब्दार्थो यत्र व्यङ्ग्यं प्रति स्थितौ।
ध्वनेः स एव विषयो मन्तव्यः संकरोज्झितः।।
तस्मान्न ध्वनेरन्तर्भावः।

अर्थ— जहाँ वाच्य का अनुगमन करने से व्यङ्ग्य का अप्राधान्य है वहाँ समासोक्ति आदि वाच्य अलंकार स्पष्ट है। जहाँ व्यङ्ग्य की केवल प्रतीति मात्र आभास होती है, अथवा वह वाच्य का अनुयायी (गुणीभूत) है, अथवा जहाँ व्यङ्ग्य की स्पष्टरूप में

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

प्रधानता नहीं है, वहाँ भी ध्वनि नहीं है। इसलिए इन समासोक्ति आदि अलंकारों में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

इस कारण भी ध्वनि का अलंकारादि में अन्तर्भाव नहीं हो सकता क्योंकि अङ्गीभूत (व्यङ्ग्यप्रधान) काव्यविशेष के ध्वनि कहा है। अलंकार—गुण और वृत्तियाँ उसके अङ्ग हैं यह आगे प्रतिपादित किये जाएंगे और न कि अवयव ही पृथग्भूत होकर अवयवी के रूप में प्रसिद्ध है। अपृथाभूत रूप में भी यह (अवयवरू अलंकारादि) उस ध्वनि के अङ्ग ही है, न कि अङ्गी है। जहाँ कहीं भी अङ्गी होना है वहाँ भी ध्वनि के महाविषय होने के कारण इन अलंकारादि में अन्तर्भूत नहीं होता। जैसा कि ग्रन्थकार ने लिखा है—

‘इतश्च अन्तर्भावः, यतः काव्यविशेषोऽङ्गी ध्वनिरिति कथितः। तस्य पुनरङ्गानि अलंकारा गुणा वृत्तयश्चेति प्रतिपादयिष्यन्ते। न चावयव एव पृथग्भूतोऽवयवीति प्रसिद्धः। अपृथग्भावे तु तदङ्गत्वे तस्य। न तु तत्त्वमेव। यत्रापि वा तत्त्वं तत्रापि ध्वनेर्महाविषयत्वान्न तन्निष्ठत्वमेव।’ इति।

तात्पर्य यह है कि ‘ध्वनि’ सर्वथा अङ्गी एवं प्रधान तत्त्व है और अलंकारादि अङ्ग या अप्रधान है। इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से यह सम्भावना भी सर्वथा निर्मूल हो जाती है कि ध्वनि किसी वाक् विकल्पों के प्रकार लेश में गतर्थ हो सकेगा। ध्वनि को स्वल्प विज्ञायक मानकर पूर्वोक्त अभाववादियों का जो यह संरम्भ था कि इसको किसी गुणालंकार के आकार—प्रकार विशेष में ही अन्तर्भाव कर दिया जाय, यह केवल उनकी दुराशामात्र है, क्योंकि वस्यमाप आकार प्रकार व भेदों की विवक्षा ही ध्वनि का विषय सीमित नहीं है। इस प्रकार विशाल इस ध्वनि के क्षेत्र को परम—सीमित अलंकार प्रकारों के प्रतिपादन मात्र से गतार्थ नहीं कर सकते। और भी, अशेष विशेषताओं से परिमण्डित इस ध्वनि के दिव्य कलेवर (स्वरूप) को केवल ईर्ष्या कलुषित नयनों के कटाक्षपात का विषय नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार आनन्दवर्धन ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से अभाववादियों के सभी विकल्पों पक्षों एवं मतों का तार्किकरीति से निराकरण कर ध्वनि की निर्विवाद सत्ता स्थापित किया।

9.2.5 ‘सूरिभिः कथितः’ इस कारिका भाग का व्याख्यान—

ध्वनि के अभाववादियों के सभी विकल्पों का निराकरण करने के क्रम में आचार्य आनन्दवर्धन के द्वारा ध्वनिसिद्धान्त की स्थापना के व्याकरणशास्त्र के आचार्यों कर मत भी संयोजित किया गया। फलतः यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अपने विचार से जैसे — तैसे ध्वनि का निरूपण कर दिया, अपितु उन्होंने ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत में ध्वनि—लक्षणनिरूपण कारिका में ‘ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः’ ऐसा कहा है। सम्प्रति इस कारिका भाग की निर्वचना में वे कहते हैं— “सूरिभिः कथितः इति विद्वदुपज्ञेयमुक्तिः, न तु यथाकथञ्चित् प्रवृत्तेतिप्रतिपाद्यते प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तम्।”

अर्थ— सूरियों (विद्वानों) ने कहा है अर्थात् यह उक्ति विद्वानों के मतानुसार है, विद्वन्मतमूलक है, यो ही अप्रामाणिक स्वकल्पित रूप से प्रचलित नहीं हो गयी है यह सूचित किया है।

प्रथम (सबसे मुख्य) विद्वान् वैयाकरण हैं, क्योंकि व्याकरण सब विद्याओं का मूल है। ये (वैयाकरण विद्वान्) श्रूयमान वर्णों में 'ध्वनि' यह व्यवहार करते हैं। उसी प्रकार उनके मत का अनुसरण करने वाले, काव्यतत्त्व के द्रष्टा सूरियों ने (काव्यतत्त्वार्थदर्शी अन्यविद्वानों ने) भी 1. वाच्य 2. वाचक 3. व्यङ्ग्यार्थ 4. व्यंजनाव्यापार और 5. काव्य पद से व्यवहार्य (अर्थात् काव्य) इन पाँचों को ध्वनि कहा है। 'ध्वनतीति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से वाचक शब्द और वाच्यार्थ को, 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से व्यङ्ग्यार्थ को, 'ध्वननं ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से व्यंजनाव्यापार को और 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति से पूर्वोक्त ध्वनिचतुष्टययुक्त काव्य को ध्वनि कहते हैं।

वस्तुतः वैयाकरण श्रूयमाण वर्णों को ध्वनि कहते हैं इसलिए उनके अनुयायी आलंकारिकों ने ध्वनि शब्द का प्रयोग किया। आलंकारिकों ने वैयाकरणों के ध्वनिशब्द का प्रयोग इस आधार पर स्वीकार किया है कि वैयाकरण उन वर्णों को ध्वनि कहते हैं जो 'स्फोट' को अभिव्यक्त करते हैं, अर्थात् 'ध्वनतीति ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर वैयाकरण (स्फोट) के अभिव्यंजक वर्णों को ध्वनि कहते हैं। इसी प्रकार ध्वनिवादियों ने 'ध्वनतीतिः ध्वनिः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर वाच्यवाचक से भिन्न व्यङ्ग्य अर्थ को बोधन करने वाले शब्द, अर्थ आदि के लिए 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार मुख्यरूप से शब्द और अर्थ के लिए फिर व्यंजनाव्यापार, व्यङ्ग्यार्थ तथा व्यङ्ग्यप्रधान काव्य के लिए 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार प्रवर्तित हुआ। अत एव ध्वनिवाद स्वकल्पित नहीं अपितु पाणिनि-पतंजलि सदृश मुनियों के मत के आधार पर आश्रित है।

9.3 ध्वनि के दो मुख्य भेद एवं दोनों के उदाहरण

ध्वनि के अभाववाद का निराकरण, ध्वनि भी सत्ता को सिद्ध करते हुए ग्रन्थकार ध्वनि के सामान्य स्वरूप की चर्चा करते हुए ध्वनि के दो प्रभेदों का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

'अस्ति ध्वनिः। स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति सामान्येन। तत्राद्यस्योदाहरणम्—

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।

द्वितीयस्यापि—

शिखरिणी क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधनमसावकरोत्तपः।

सुमुखि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः।।

इसलिए ध्वनि है वह सामान्यतः अविवक्षित वाच्य (लक्षणा मूल) और विवक्षितान्यपरवाच्य (अभिधमूल) भेद से दो प्रकार का होता है। अविवक्षितवाच्यध्वनि पुनः अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य व अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य के भेद से दो प्रकार का होता है। इसी प्रकार विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि भी संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य के भेद

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

से दो प्रकार की होती है, पुनः इनके अनेक अवान्तर भेदोभेद किए जाते हैं। उक्त ध्वनियों के भेद, प्रभेद उदाहरण सहित द्वितीय उद्योत में विस्तार से दिखलाये जायेंगे। यहाँ केवल संक्षेप में उक्त दोनों ध्वनियों का उदाहरणपूर्वक सामान्य परिचय दिया जाता है। उनमें से प्रथम (अविवक्षितवाच्य या लक्षणामूलध्वनि) का उदाहरण—

सुवर्णपुषां जानाति सेवितुम् ।।

अर्थ— सुवर्ण जिसका पुष्प है ऐसी पृथिवी का चयन, अर्थात् पृथिवीरूप लता के सुवर्णरूप पुष्पों का चयन तीन ही पुरुष करते हैं— शूर, विद्वान् और जो सेवा करना जानता है (सेवा में निपुण)।

भावार्थ— यहाँ न तो पृथिवी कोई लता है, न सुवर्ण पुष्प और न उसका चयन ही हो सकता है। अतः सुवर्णपुषा पृथिवीं चयन' यह वाक्य यथाश्रुत रूप में अन्वित नहीं हो सकता, इसलिए पुरुषार्थबोध होने से लक्षणा द्वारा विपुल धन और उसके उपार्जन से सुलभ समृद्धिसम्भारभाजनता को व्यक्त करते हैं। लक्षणा का प्रयोजन शूर, कृतविद्य और सेवकों का प्राशस्त्य, स्पद से वाच्य न होकर सौन्दर्यविषयरूप से ध्वनि होता है। लक्षणामूल होने से इसको अविवक्षितवाच्यध्वनि कहते हैं।

वस्तुतः यहाँ वाच्यार्थ सर्वथा असंगत है क्योंकि पृथिवी सुवर्णों को पुष्पित करती है, तथा शूरवीर आदि उसका चयन किया जाना ये दोनों अर्थ अनुपन्न है, वाच्यार्थ का इस प्रकार अविवक्षित या असंगत होने से तत्पश्चात् लक्षणा द्वारा सादृश्यसम्बन्ध के बल से शूर विद्वान् व चतुरसेवक प्रभूत धन सम्पत्ति प्राप्त कर लेते हैं, यह बात लक्षित होती है, क्योंकि पृथिवी कोई पुष्प है नहीं जिसका चयन किया जा सके। अतः लक्षणाशक्ति द्वारा सुलभ—समृद्धि लक्षित होती है। उस लक्षणा का प्रयोजन शूर, कृतविद्य एवं सेवकों का जो प्राशस्त्य है वह शब्द के वाच्य न होकर व्यंजनाद्वारा ध्वनित होता है। यहाँ शब्द प्रधान रूप से व्यंजक है औश्र अर्थ शब्द के सहकारी होने के कारण व्यंजक है।

इस प्रकार व्यङ्ग्यार्थ निष्पन्न होता है— कि उक्त तीन तरह के पुरुष ही इस पृथिवी में प्रशस्त या प्रशंसा के भाजन हैं, जो अपनी शूरता विद्वत्ता व सेवानिपुणता से सुलभ सम्पत्ति वाले हैं। अतः यहाँ लक्षणामूल में होने के कारण, लक्षणामूल ध्वनि है।

द्वितीय भेद विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि के उदाहरण के रूप में ग्रन्थकार ने —

शिखरिणी क्व शुकशावकः ।। इस पद्य को उद्धृत किया है।

यहाँ वाच्य विवक्षित तो हो परन्तु वह अन्यपरवाच्य अर्थात् अन्यनिष्ठ हो वहाँ विवक्षितान्यपरवाच्य या अभिधमूलध्वनि होता है। जैसे उक्त पद्य में प्रदर्शित किया गया है।

पद्य का अर्थ— हे तरुणि ! यह तोते का वच्य किस पर्वत पर कितने दिनों तक कौन सा तप किया है। जो तेरे अधर के समान लालवर्ण वाले बिम्बफल को काट रहा है।

उक्त पद्य में कोई खुशामदी नायक किसी प्रेयसी के सामने तोते के बच्चे को निर्देश कर कह रहा है कि तुम्हारे अधर के समान लाल वर्ण के बिम्बफल के आस्वादन के लिए न मालूम शुकशावक ने कौन से सिद्धिदायक श्रीपर्वतों पर न जाने कितने वर्षों तक, कौन सा तप किया होगा, जिसके फलस्वरूप आज यह तुम्हारे अधर के समान पाटलवर्ण के बिम्बफल के आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है।

अर्थात् जब तुम्हारे अधर के तुल्य बिम्बफल के आस्वादन के लिए इस प्रकार की असामान्य तपस्या करनी पड़ती है तो फिर साक्षात् तुम्हारे अधरपान के लिए न मालूम कौन सा तप करना पड़ेगा। तुम्हारा अधर प्रकृष्ट पुण्यों द्वारा लभ्य है यह पार्यन्तिक व्यङ्ग्य है। यहाँ अनुरागी का अपने प्रच्छन्न अभिप्राय के ख्यापन के वैदग्ध्य से चाटुरचना द्वारा विभाव (तरुणी रूप आलम्बन विभाव) का उद्दीपन व्यङ्ग्य है। अर्थात् नायिका के प्रति अभिलाष व्यङ्ग्य हो रहा है।

मूलपाठः

यथा स्वसामर्थ्यवशेनैव वाक्यार्थ प्रकाशयन्नपि पदार्थो
व्यापारनिष्पत्तौ न भाव्यते विभक्ततया ॥

तद्वत्सचेतसां सोऽर्थो वाच्यार्थविमुखात्मनाम् ।
बुद्धौ तत्त्वार्थदर्शिन्यां झटित्येवावभासते ॥12॥

एवं वाच्यव्यतिरेकिणो व्यङ्ग्यस्यार्थस्य सद्भावं प्रतिपाद्य प्रकृत
उपयोजयन्नाह ———

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥13॥

यत्रार्थो वाच्यविशेषः वाचकविशेषः शब्दो वा तमर्थ व्यङ्क्तः ,
स काव्यविशेषो ध्वनिरिति ।

अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रासादिभ्यश्च
विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम् । यदप्युक्तम् ———

‘प्रसिद्धप्रस्थानातिक्रमिणो मार्गस्य काव्यहानेर्ध्वनिर्नास्ति’ इति ,
तदप्युक्तम् । यतो लक्षणकृतामेव स केवलं न प्रसिद्धः, लक्ष्ये

तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम् ।
ततोऽन्यच्चित्रमेवेत्यग्रे दर्शयिष्यामः ।

यदप्युक्तम् ——— ‘कामनीयकमनतिवर्तमानस्य तस्योक्तालंकारादि—

प्रकारेष्वन्तर्भावः’ इति , तदप्यसमीचीनम् य वाच्यवाचकमात्रा—

श्रयिणि प्रस्थाने व्यङ्ग्यव्यंजकसमाश्रयेण व्यवस्थितस्य ध्वनेः

कथमन्तर्भावः , वाच्यवाचकचारुत्वहेतवो हि तस्यांगभूताः ,

स त्वंगिरूप एवेति प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

परिकरश्लोकाश्चात्र ———

व्यङ्ग्यव्यंजकसम्बन्धनिबन्धनतया ध्वनेः ।
वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्तःपातिता कुतः ॥

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

ननु यत्र प्रतीयमानस्यार्थस्य वैशद्येनाप्रतीतिः स नाम मा भूद्
ध्वनेर्विषयः । यत्र तु प्रतीतिरस्ति , यथा ———
समासोक्त्याक्षेपानुक्तनिमित्तविशेषोक्तिपर्यायोक्तापह्नुतिदीपकसंकरा—
लंकारादौ , तत्र ध्वनेरन्तर्भावो भविष्यतीत्यादि निराकर्तुमभिहितम्
———‘उपसर्जनीकृतस्वार्थो’ इति ।

अर्थो गुणीकृतात्मा , गुणीकृताभिधेयः शब्दो वा यत्रार्थान्तर—
मभिव्यनक्ति स ध्वनिरिति । तेषु कथं तस्यान्तर्भावः । व्यङ्ग्यप्राधान्ये
हि ध्वनिः । न चौतत्समासोक्त्यादिष्वस्ति ।
समासोक्तौ तावत् ———

**उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तथा पुरोऽपि रागाद्गलितं न लक्षितम् ॥**

इत्यादौ व्यङ्ग्येनानुगतं वाच्यमेव प्राधान्येन प्रतीयते समारोपित—
नायिकानायकव्यवहारयोर्निशाशशिनोरेव वाक्यार्थत्वात् ।
आक्षेपेऽपि व्यङ्ग्यविशेषाक्षेपिणोऽपि वाच्यस्यैव चारुत्वं प्राधान्येन
वाक्यार्थ आक्षेपोक्तिसामर्थ्यादेव ज्ञायते । तथाहि — तत्र शब्दोपारूढो
विशेषाभिधानेच्छया प्रतिषेधरूपो य आक्षेपः स एव व्यङ्ग्यविशेष—
माक्षिपन्मुख्यं काव्यशरीरम् ।
चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा ।
यथा ———

**अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः ।
अहो दैवगतिः कीदृक्तथापि न समागमः ॥**

अत्र सत्यामपि व्यङ्ग्यप्रतीतौ वाच्यस्यैव चारुत्वमुत्कर्षवदिति तस्यैव
प्राधान्यविवक्षा ।
यथा च दीपकापह्नुत्यादौ व्यङ्ग्यत्वेनोपमायाः प्रतीतावपि प्राधान्येना—
विवक्षितत्वान्न तथा व्यपदेशस्तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम् ।
अनुक्तनिमित्तायामपि विशेषोक्तौ ———

**आहूतोऽपि सहायैरोमित्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोऽपि ।
गन्तुमना अपि पथिकः सङ्कोचं नैव शिथिलयति ॥**

इत्यादौ व्यङ्ग्यस्य प्रकरणसामर्थ्यात्प्रतीतिमात्रं न तु तत्प्रतीतिनिमित्ता
काचिच्चारुत्वनिष्पत्तिरिति न प्राधान्यम् । पर्यायोक्तेऽपि यदि प्राधान्येन
व्यङ्ग्यत्वं तद्भवतु नाम तस्य ध्वनावन्तर्भावः । न तु ध्वनेस्तत्रान्त-
र्भावः । तस्य महाविषयत्वेनाङ्गित्वेन च प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् । न
पुनः पर्यायो भामहोदाहृतसदृशे व्यङ्ग्यस्यैव प्राधान्यम् । वाच्यस्य
तत्रोपसर्जनाभावेनाविवक्षितत्वात् ।

अपह्नुतिदीपकयोः पुनर्वाच्यस्य प्राधान्यं व्यङ्ग्यस्य चानुयायित्वं
प्रसिद्धमेव ।

संकरालंकारेऽपि यदलंकारोऽलंकारान्तरच्छायामनुगृह्णाति ,

तदा व्यङ्ग्यस्य प्राधान्येनाविवक्षितत्वान्न ध्वनिविषयत्वम् ।

अलंकारद्वयसम्भावनायां तु वाच्यव्यङ्ग्ययोः समं प्राधान्यम् ।

अथ वाच्योपसर्जनीभावेन व्यङ्ग्यस्य तत्रावस्थानं तदा सोऽपि
ध्वनिविषयोऽस्तु , न तु स एव ध्वनिरिति वक्तुं शक्यम् । पर्यायोक्त-
निर्दिष्टन्यायात् ।

अपि च संकरालंकारेऽपि च क्वचित् संकरोक्तिरेव ध्वनिसम्भावनां
निराकरोति ।

अप्रस्तुतप्रशंसायामपि यदा सामान्यविशेषभावान्निमित्तनिमित्ति-
भावाद्वा अभिधीयमानस्याप्रस्तुतस्य प्रतीयमानेन प्रस्तुतेनाभि-
सम्बन्धस्तदाभिधीयमानप्रतीयमानयोः सममेव प्राधान्यम् ।

यदा तावत्सामान्यस्याप्रस्तुतस्याभिधीयमानस्य प्राकरणिकेन

विशेषेण प्रतीयमानेन सम्बन्धस्तदा विशेषप्रतीतौ सत्यामपि

प्राधान्येन तत्सामान्येनाविनाभावात्सामान्यस्यापि प्राधान्यम् ।

यदापि विशेषस्य सामान्यनिष्ठत्वं तदापि सामान्यस्य प्राधान्ये

सामान्ये सर्वविशेषाणामन्तर्भावाद्धिशेषस्यापि प्राधान्यम् ।

निमित्तनिमित्तिभावे चायमेव न्यायः ।

यदा तु सारूप्यमात्रवशेनाप्रस्तुतप्रशंसायामप्रकृतप्रकृतयोः

सम्बन्धस्तदाप्यप्रस्तुतस्य सरूपस्याभिधीयमानस्य प्राधान्येना-

विवक्षायां ध्वनावेवान्तःपातः । इतरथा त्वलंकारान्तरमेव ।

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्द्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

तदयमत्र सङ्क्षेपः ———

व्यङ्ग्यस्य यत्राप्राधान्यं वाच्यमात्रानुयायिनः ।
समासोक्त्यादयस्तत्र वाच्यालङ्कृतयः स्फुटाः ॥

व्यङ्ग्यस्य प्रतिभामात्रे वाच्यार्थानुगमेऽपि वा ।
न ध्वनिर्यत्र वा तस्य प्राधान्यं न प्रतीयते ॥

तत्परावेव शब्दार्थौ यत्र व्यङ्ग्यं प्रति स्थितौ ।
ध्वनेः स एव विषयो मन्तव्यः संकरोज्झितः ॥

तस्मान्न ध्वनेरन्यत्रान्तर्भावः । इतश्च नान्तर्भावः य यतः

काव्यविशेषोऽङ्गी ध्वनिरिति कथितः । तस्य पुनरङ्गानि ———

अलंकारा गुणा वृत्तयश्चेति प्रतिपादयिष्यन्ते । न चावयव एव

पृथग्भूतोऽवयवीति प्रसिद्धः । अपृथग्भावे तु तदङ्गत्वं

तस्य । न तु तत्त्वमेव । यत्रापि वा तत्त्वं तत्रापि ध्वनेर्महाविषय-

त्वान्न तन्निष्ठत्वमेव । 'सूरिभिः कथित' इति विद्वदुपज्ञेयमुक्तिः ,

न तु यथाकथञ्चित्प्रवृत्तेति प्रतिपाद्यते । प्रथमे हि विद्वांसो

वैयाकरणाः , व्याकरणमूलत्वात्सर्वविद्यानाम् । ते च श्रूयमाणेषु

वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति ।

तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभि-

र्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यञ्जक-

त्वसाम्याद्ध्वनिरित्युक्तः । न चौवविधस्य ध्वनेर्वक्ष्यमाणप्रभेद-

तद्भेदसंकलनया महाविषयस्य यत्प्रकाशनं तदप्रसिद्धालंकार-

विशेषमात्रप्रतिपादनेन तुल्यमिति तद्भावितचेतसां युक्त एव

संरम्भः । न च तेषु कथञ्चिदीर्घ्या कलुषितशेषुषीकत्व-

माविष्करणीयम् । तदेवं ध्वनेस्तावदभाववादिनः प्रत्युक्ताः ।

अस्ति ध्वनिः । स चासावविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति

द्विविधः सामान्येन ।

तत्राद्यस्योदाहरणम् ———

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥

द्वितीयस्यापि ----

शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावकरोत्तपः ।

तरुणि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः ।।

9.4 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत की कारिका 12 से 13 तक का वृत्ति सहित अध्ययन किया। जिसमें आपने प्रमुख रूप से काव्यों में व्यङ्ग्यार्थ की ही प्रधानता होती है, इसका सविशेष अध्ययन किया। साथ ही व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य की अक्षुण्णता ध्वनि का लक्षण एवं स्वरूप का विस्तार से अध्ययन किया। अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का खण्डन विशेष रूप से समासोक्ति-पर्यायोक्ति-दीपक-अपह्नुति-अप्रस्तुतप्रशंसा-आक्षेप-विशेषोक्ति-संकर प्रभृति अलंकारों में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। अभाववादियों के तीनों विकल्पों का खण्डन पूर्वक समाधान अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव की अशंका एवं उसका निराकरण, ध्वनि का महाविषय अङ्गी एवं प्रधान विषय के रूप में निरूपण गुण अलंकार, वृत्ति आदि विषयों का अङ्गरूप में प्रतिपादन, ध्वनि से ही काव्य के चारुत्वोत्कर्ष, सूरिभि कथितः इस ध्वनिलक्षण कारिका भाग की विशेष व्याख्या, वैयाकरणों के अनुसार ध्वनि का स्वरूप निरूपण, ध्वनि काव्य के सामान्य दो भेद एवं उसके उदाहरण, ध्वनि की सत्ता की निर्विवाद स्थापना प्रभृति विषयों का सविशेष अध्ययन किया।

उपर्युक्त इकाई के अध्ययन से आप आनन्दवर्धन के मतानुसार ध्वनि के अभाववादियों के तीनों विकल्पों का निराकरण करते हुए ध्वनि के लक्षण एवं स्वरूप को तथा अलंकारों में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, इन तथ्यों को ज्ञान आपको हुआ होगा, जिससे ध्वन्यालोक ग्रन्थ में आपकी गति और प्रशस्त होगी।

9.5 शब्दावली

संगृहीत	—	ग्रहण किया गया है
अक्षुण्णता	—	पूर्णरूप से, अखंडित, सम्पूर्णता, जिसकी सत्ता बनी रे।
प्रतीति	—	ज्ञान, बोध
समर्पण	—	न्योछावर
तत्त्वार्थदर्शिनी	—	तत्त्व को समझनेवाली, रहस्य को जाननेवाली
आकांक्षा	—	जिज्ञासा
अवभासित	—	प्रकटित
अभिलक्षित	—	प्रतीत होना, दिखाई देना
अविवक्षितवाच्य	—	जहाँ वाच्य विवक्षित न हो
समष्टि	—	समुदाय रूप में

ध्वन्यालोकः
(आनन्दवर्धन)
प्रथम एवं चतुर्थ
उद्योत

समाश्रयण	–	आश्रय ग्रहण करना
उपसर्जन	–	गौण कर लेना
स्मारोपित	–	आरोपित किया हुआ
वाच्यानुगामित्व	–	वाच्य का अनुगामी, वाच्य का अनुसरण कर्ता
पृथग्भूत	–	अलग होकर
निर्मूल	–	पूर्णरूप से समाप्त होना
विवक्षा	–	वक्ता की इच्छा
परिमण्डित		संयुक्त, व्याप्त
काव्यतत्त्वार्थदर्शी		काव्यमर्मज्ञ
स्वकल्पित		खुद की कल्पना

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ध्वन्यालोकः आनन्दवर्धनाचार्य विरचित, व्याख्याकार— आचार्य जगन्नाथपाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

ध्वन्यालोक व्याख्याकार— आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

ध्वन्यालोक लीला संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित, आचार्य लोकमणि दहाल, भारतीयविद्याप्रकाशन, दिल्ली

संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास पी.वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली

ध्वन्यालोक व्याख्याकार— के.कृष्णमूर्ति, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

ध्वन्यालोक व्याख्याकार— डॉ. रामसागरत्रिपाठी, मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली

काव्यशास्त्रविमर्श डॉ. कृष्णकुमार, मयङ्क प्रकाशन, कनखल, हरिद्वार

ध्वन्यालोक व्याख्याकार— डॉ. बालप्रियाटीकासमन्वित, काशी संस्कृत सीरिज, वाराणसी

ध्वनिसिद्धान्त डॉ. राममूर्तिशर्मा, अजन्ता पब्लिकेशन्स, जवाहरनगर, नई दिल्ली

ध्वन्यालोकविमर्श प्रो. माणिकगोविन्द चतुर्वेदी, अक्षरप्रकाशन, विश्वासनगर, दिल्ली

आनन्दवर्धन लेखक— प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

9.7 बोध प्रश्न

1. ध्वन्यालोक के आधार पर ध्वनि के लक्षण एवं स्वरूप का निरूपण करें।
2. व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य का प्रतिपादन करें।
3. अभाववाद का खण्डन प्रस्तुत करें।

4. अलंकारों में ध्वनि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, इस तथ्य को सोदाहरण निरूपित करें।
5. ध्वन्यभावादियों का समाधान प्रस्तुत करते हुए ध्वनि का अङ्गत्व प्रतिपादित करें।
6. 'सूरिभिः कथितः' इस कारिका भाग की व्याख्या करें।
7. गुण, अलंकार, वृत्ति प्रभृति तत्त्वों का अङ्गत्व ध्वन्यालोक के आधार पर स्थापित करें।
8. ध्वनि के मुख्य दो भेदों का सोदाहरण वर्णन करें।

